International Journal of Applied Research 2015; 1(7): 196-200

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(7): 196-200
www.allresearchjournal.com
Received: 16-04-2015
Accepted: 17-05-2015

प्रवीण शर्मा
पीएच.डी. (संस्कृत) दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Correspondence:
प्रवीण शर्मा
पीएच.डी. (संस्कृत) दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संस्कृतव्याकरण परम्परा में पद–विभाग

प्रवीण शर्मा

भूमिका

भाषा जन–जन के दैनिक प्रयोग का विषय है, उसके विकास या स्वरूप के किन्हीं नियमों को ढूँढ निकालना या उन्हें निश्चित करना पर्याप्त कठिन कार्य है। समझा यह जाता है कि व्याकरण उन नियमों के समूह को कहते हैं जिनसे किसी भाषा की गति, जीवन और विकास की प्रक्रियाओं की व्याख्या हो सकती है।

भाषा शब्द की उत्पत्ति भाष् वक्तायां वाची धातु से हुई है, जिसका अर्थ व्यक्त करना, बोलना है। भाषा की यह व्यक्तता पशु–पक्षियों की अव्यक्त वाक् के लिए भाषा शब्द के प्रयोग को निषिद्ध करने के साथ–साथ मनुष्यों की अव्यक्त अर्थात् अपभ्रष्ट या विकृत वाक् के लिए भी इसके प्रयोग को वर्जित करते हुए उसे शिष्ट मनुष्यों की व्याकरण सम्मत परिनिष्ठित भाषा तक सीमित भी कर देती है। भारतीय वैयाकरण एवं दार्शनिकों ने भाषा शब्द के प्रयोग को केवल परिनिष्ठित लौकिक भाषा तक ही सीमित रखा है। इसलिए पाणिनि ने वैदिक भाषा के लिए छन्दस्, निगम आदि शब्दों का प्रयोग किया है।[1] निरुक्तकार ने वैदिक भाषा के लिए अन्वध्याय शब्द का प्रयोग किया है।[2]

वर्ण, पद, वाक्य भाषा के प्रमुख तत्त्व है इनमें पद परिचय अपेक्षित है। व्यावहारिक दृष्टि से पदों की सत्ता स्वीकार्य है।

पद–स्वरूप– व्याकरण शास्त्र पदशास्त्र के रूप में सुप्रसिद्ध है। पदशास्त्र के अनुसरण से सभी शास्त्रों का व्यवहार जगत् में सम्यक् रूप से प्रचलित है। पद का शाब्दिक अर्थ– **"पद्यते गम्यते (बोधयति अर्थम्) यत् तद् इति"** अर्थात् गति (ज्ञान) अर्थ वाली पद् धातु से घञ् प्रत्यय करके वृद्धि के अभाव में पद शब्द की सिद्धि होती है। अष्टाध्यायी के अनुसार **"नन्दिग्रहिपचादिभ्योल्युणिन्यचः"** से अच् प्रत्यय होकर अनुबन्ध लोप होकर पद बनता है। अर्थात् जो अर्थ का बोध कराता हो वह पद है। सर्वप्रथम ऋग्वेद में पद सम्बन्धी तथ्य प्राप्त होते हैं– "**हिरण्यपाणिमुतये सवितारमुपह्वये। स चेत्ता देवता पदम्।"**[3] गोपथ ब्राह्मण में भी –कतिपदः[4] – उल्लेख है। निरुक्त में पद से सम्बन्धित विस्तृत तथ्य प्राप्त होते है– तद्यान्येतानि चत्वारि पद जातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च तानि मानी भवन्ति।

वस्तुतः पदस्वरूपनिर्धारण के विषय में पुरातनों के पदतत्त्व ज्ञान से सम्बन्धित बहु विचार है। प्रथम पद का लक्षण प्रातिशाख्यों में प्राप्त होता है। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में **"एक वर्ण पदमिति"**[5] प्राप्त होता है। बृहददेवता में पद के सन्दर्भ में **"वर्ण संघातजंपदम्"।**[6] प्रायः प्रातिशाख्यों में वर्ण, वर्ण के समूह को पद की संज्ञा दी है। वही यजुर्वेद प्रातिशाख्य में **"अर्थः पदमिति"** उक्ति से अन्य प्रातिशाख्यों से समन्वय किया है। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में पद के सन्दर्भ में विवेचन है– नानापदवदिङ्ग्यमसंज्ञाने।[7] न्यायमंजरी ने जयन्तभट्ट ने भी पद का लक्षण **"वर्णसमूहपदम्"** दिया है।[8]

वस्तुतः यह प्रतीत होता है कि प्रातिशाख्यों में एक अक्षर, वर्ण को भी पद स्वीकार किया है, पुराणों में वर्ण समूह को पद स्वीकृत किया है। लोक में वर्णों के संघात को पद माना है। महर्षि पाणिनि ने प्रत्याहारों को ध्यान में रखते हुए पद का लक्षण दिया है– **"सुप्तिङन्तं पदम्"**[9] सुप् और तिङ् को पद माना है, सुप् प्रत्याहार में **"स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्य– स्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङयोस्सुप्"**[10] ये इक्कीस प्रत्यय आते हैं, तथा तिङ् प्रत्यय में **"तिप्तस्झि सिप्थस्थ मिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिङ्वहिंमहिङ"**[11] ये 18 प्रत्यय संगृहित है। सु आदि प्रत्यय प्रातिपदिक से परे होते हैं यथा– रामः, रामो, रामाः। तथा तिप् आदि प्रत्यय धातु से होते हैं यथा– भवति भवतः भवन्ति। अतः बिना पद ज्ञान के साधु शब्द का प्रयोग नहीं होता और साधु शब्द का प्रयोग आवश्यक है। पतञ्जलि ने महाभाष्य में कहा है– **"एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति"**[12] अतः पदज्ञान अत्यावश्यक है। पद के साथ–साथ पद के विभाग के विषय में भी विभिन्न मत रहे, जिसका विषयज्ञान अपेक्षित है।

पद विभाग– आदिकाल से ही भाषा विषयक अध्ययन में पद–विभाग का विवेचन होता आया है। वर्तमान समय में भाषा–तत्त्व के पूर्ण विश्लेषण के बाद भी विद्वान् पद–विभाग विषय में मतैक्य प्रदर्शित नहीं कर पाये हैं। कुछ आचार्य पद के दो प्रकार मानते हैं कुछ चार प्रकार के पद स्वीकृत करते हैं तथा कुछ अन्य पद के पाँच प्रकार स्वीकृत करते हैं। भर्तृहरि ने इन मतभेदों के लिए एक कारिका उपस्थापित की है–

द्विधा कैश्चित् पदं भिन्नं चतुर्धा पञ्चधाऽपिवा।
अपोधृत्यैव वाक्येभ्यः प्रकृति प्रत्ययादिवत्।।[13]

कारिका में पदविभाग के द्विधा पक्ष, चतुर्धापक्ष तथा पंचधापक्ष का उल्लेख किया है। संस्कृत व्याकरण परम्परा में पद तथा उसके विभाग के विषय में प्राचीनकाल से चिन्तन होता रहा है, वेदों में चर्तुविध पद के संकेत प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में–

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्पपादा, द्वे शीर्षे सप्त हस्ता सो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोखीति महोदेवो मर्त्यां आविवेश।।

इस मन्त्र की महर्षि पतञ्जलि ने शब्दशास्त्रपरक व्याख्या की है यथा– चत्वारि शृङ्गाणि चत्वारि पद जातानि, नामाख्यातोपसर्ग निपाताश्च।। प्रातिशाख्यों में पद–विभाग सम्बन्धी उपयुक्त तथ्य प्राप्त होते हैं–

नामाख्यातमुपसर्गो निपातश्चत्वार्या हुः पदजातानिशाब्दाः।[14]

अर्थ को ध्यान में रखते हुए पद–विभाग के विषय में तीन पक्ष प्रमुख है प्रथम द्विधापक्ष इसमें पद के केवल दो प्रकार माने गये हैं, दूसरा चतुर्धापक्ष इसमें नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात को पद के चार प्रकार स्वीकार करता है। तृतीय पंचधापक्ष इस मत में इन चारों के साथ कर्मप्रवचनीय को भी स्वीकार किया जाता है।

द्विधापक्ष– द्विधापक्ष में केवल नाम और आख्यात को ही पद मानते हैं, जिन पदों से द्रव्य अर्थात् सत्व की प्रतीति होती है वे नाम हैं।[15] तथा जिनसे भाव अर्थात् क्रिया की प्रतीति होती है वे आख्यात है। द्विधा पदवादियों को नामरूपपद तथा आख्यातरूप पद ही अभिप्रेत है। पाणिनि ने पदरचना या पद ज्ञान का आधार सूत्र माना है– **सुप्तिङन्तं पदम्।[16]** अर्थात् सुबन्त और तिङन्त का नाम पद है सुप् इन प्रत्ययों का नाम है जो संज्ञाओं के अन्त में विभक्ति रूपों में व्यवहृत होते हैं उन्हें हम कारक या विभक्ति के प्रत्यय कहते हैं। तिङ् उन प्रत्ययों को कहते हैं जिनके सहयोग से क्रिया रूपों का निर्माण होता है। पद नाम प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि कोई भी प्रातिपदिक या धातु इन प्रत्ययों से संयुक्त हो। पाणिनि ने उपसर्ग निपात के साथ कर्मप्रवचनीय की सत्ता का भी उल्लेख किया है। उन्होंने उपसर्ग, निपात और कर्मप्रवचनीय को अव्यय का नाम दिया।

चतुर्धा पक्ष– तात्विक दृष्टि से पद के दो भेद हैं तथा व्यावहारिक दृष्टि से कुछ विद्वानों ने पद की चार प्रकार की कल्पना की है। यह पक्ष नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात को पद के प्रकार मानता है। इस मत में उपसर्ग और निपात, नाम तथा आख्यात से भिन्न है। सर्वप्रथम चतुर्विध पद का उल्लेख ऋक्संहिता में प्राप्त होता है–

चत्वारिवाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मण ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।[17]

ऋक् प्रातिशाख्य में भी चतुर्विध पदों की चर्चा की गयी है– **नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चत्वार्याहुः।[18]** यास्क ने भी पद चतुष्ट्य की मान्यता को स्वीकार किया– **"यद्वा समाहृता भवन्ति तद्यानि एतानि चत्वारि पद जातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च, तानिमानि भवन्ति।"[19]** यास्क ऋग्वेद की पंक्ति **"चत्वारि पदजातानि"** की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि वैयाकरण पदचतुष्ट्य को स्वीकार करते हैं। **"नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्चेति वैयाकरणाः इति।।"[20]** भाष्यकार पतञ्जलि ने व्याकरण अध्ययन के प्रयोजनों के प्रतिपादन में उद्धृत किया है कि नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ये चार पद होते हैं।[21] ऋक्प्रातिशाख्य में भी पदों के चार प्रकार स्वीकृत किये हैं– **नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चत्वार्याहुः पदजातानि शाब्दाः[22] इति।** शुक्ल यजुः प्रातिशाख्य में उक्त पदचतुष्ट्य उपलब्ध होता है– **नामाख्यातोपसर्गनिपाताः।[23]** ऋक्प्रातिशाख्य के भाष्य में उव्वट ने पदों के विभाग चतुष्ट्य का उलेख किया है।[24] सर्वदर्शन संग्रह में माधव ने पतञ्जलि के पद चतुर्विध की युक्तता का प्रतिपादन किया है।[25]

ऋक् संहिता के भाष्य में सायणाचार्य ने नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात भेद से चार प्रकार के पदों का समुपस्थापन किया है।[26] तथा ऋक् संहिता में स्वामी दयानन्द ने अपने भाष्य में पदचतुष्ट्य को स्वीकृत किया है।[27]

चतुर्विध पदों को स्वीकार करने वाले आचार्य कर्मप्रवचनीयों को उपसर्ग के अन्तर्गत स्वीकृत करते हैं। उपसर्ग के विषय में पतञ्जलि का मत है कि उपसर्ग क्रिया की विशेषता बताते हैं। प्रपचति पद में पचति क्रियाबोधक है तथा प्र उसकी विशेषता बताता है।[28]

जो अनेक अर्थों को द्योतित करते वे निपात कहलाते हैं।[29] निपात का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से नहीं हो सकता। ये सदैव नाम और आख्यात के साथ ही आते हैं।[30]

पञ्चधा पक्ष– तृतीयपक्ष के अन्तर्गत नाम, आख्यात, उपसर्ग निपात और कर्मप्रवचनीय इन पाँचों में पदों को विभक्त मानते हैं भर्तृहरि ने पदविषयक मतभेद निरूपण में के सन्दर्भ में इस मत का भी निर्देश किया था।

कर्मप्रवचनीय को उपसर्ग से पृथक् स्वतन्त्र वर्ग में रखा है। इस मत मे मान्यता है कि कर्मप्रवचनीय उपसर्ग के समान साक्षात् किसी क्रिया का विशेषता का द्योतन नहीं करते अतः ये उपसर्गों से भिन्न हैं।[31] अथर्ववेद प्रातिशाख्य में कर्मप्रवचनीय का उल्लेख मिलता है।[32]

पद भेदों का क्रमशः स्वरूप परिचय–

1) नाम– सामान्य रूप से पद–विभाग का निरूपण करने के पश्चात् पुनः नाम, आख्यात, उपसर्ग निपात और कर्मप्रवचनीय पर पृथक्–पृथक् विचार करते हैं। सर्वप्रथम नाम शब्द का अर्थ अभ्यासार्थक म्ना धातु से म्नायतेऽभ्यस्ते व्युत्पत्ति करके नाम शब्द सिद्ध होता है। **"नम्यते (अभिधीयते अर्थः) अनेन इति।"** जिसके द्वारा अर्थ का अभिधान होता है उसे नाम कहते हैं।

वस्तुतः प्रातिशाख्य एवं निरुक्तादिग्रन्थों के पर्यालोचन से नाम पद प्रातिपदिक बोध के लिए सुप्रसिद्ध है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य में पदों का पृथक्–पृथक् विवेचन प्राप्त होता है– **तन्नाम येनाभिदधातिसत्त्वम्।[33]** प्रातिशाख्यों में उपसर्ग और निपात का ग्रहण नाम से अलग होता है। यथा–

क्रियावाचकआख्यातमुपसर्गौ विशेषकृत्।
सत्त्वाभिधायकं नाम निपातः पादपूरणः।।[34]

निरूक्तकार यास्क ने स्पष्ट शब्दों में **"सत्त्व प्रधानानि नामानि"[35]** से नाम को प्रतिपादिक किया। नाम की यह परिभाषा सर्वत्र प्रचलित है। सत्त्व के लिए कहा है कि **"लिङ्गसंख्यान्वितंद्रव्यं सत्त्वम्"** लिङ् संख्या से अन्वित द्रव्य ही सत्त्व है। रामकृष्ण आदि शब्द सत्त्व विधायक होकर नाम पद से प्राप्त होते हैं।

2) आख्यात– नामपद के अनन्तर आख्यात पद का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं ऋग्वेद प्रातिशाख्य में ही जहाँ **"तन्नाम येनाभिदधाति सत्त्वमिति"** नाम का लक्षण दिया वही पर **"तदाख्यातं येनभावं स धातु"**[36] से आख्यात का स्वरूप भी प्रतिपादित किया अर्थात् जिस शब्द से क्रिया का अभिधान हो वह धातु आख्यात कहलाती है। शुक्ल यजुर्वेद प्रातिशाख्य में भी स्पष्ट कहा है **"क्रिया प्रधानमाख्यातभिति।"**[37] सामान्यतः व्यापारबोधक क्रिया शब्द व्यवहार में प्रचलित है। यास्काचार्य ने भी पूर्वोक्त आख्यात का स्वरूप **"भाव प्रधानमाख्यातम्"**[38] स्वीकृत किया है। वस्तुतः नामपद सत्त्व प्रधान तथा क्रिया प्रधान आख्यात पद से नाम तथा आख्यात का स्वरूप स्पष्ट है जिसे प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। इससे भावप्रधान, क्रियाप्रधान अथवा तिङन्तपद ही बोध्य होते हैं। ऋक् संहिता के भाष्य में सायण ने आख्यात का स्वरूप क्रिया प्रधान[39] माना है। वाजसनेय प्रातिशाख्य के भाष्य में उव्वट तथा अनन्तभट्ट ने यास्क के मत का अनुसरण किया है–

क्रिया वाचक आख्यात मुपसर्गो विशेषकृत्।
सत्त्वाभिधायकं नाम निपातः पादपूरणः।।[40]

महर्षि पतञ्जलि ने भी यास्क के मत को अनुमोदित किया है– **"क्रियाप्रधानमाख्यातम्।"**[41]

3) उपसर्ग– नाम आख्यात के पश्चात् उपसर्ग पर विचार किया जाता है उपसृज्यते असौ इति। उप = (समीपे), सृज्यते (प्रयुज्यते) इति अर्थात् धातु के समीप में जिसका प्रयोग किया जाये वह उपसर्ग कहलाता है। उप् $\sqrt{\text{सृज}}$ धातु से घञ् प्रत्यय करके उपसर्ग शब्द निष्पन्न होता है। पाणिनि तन्त्र में उपसर्ग को परिभाषित किया है– **"उपसर्गाक्रियायोगे"**[42] अर्थात् प्रादिगण पठित शब्द जब क्रिया के साथ प्रयोग होते हैं तब उन्हें उपसर्ग पद से व्यवहृत किया जाता है। सर्वप्रथम ऐतरेय ब्राह्मण में उपसर्ग शब्द का प्रयोग किया गया– **"महानाम्नी नामुपसर्गा नुपसृजति।"**[43] गोपथ ब्राह्मण में भी उपसर्ग शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है– **"कः प्रत्यय कः स्वर उपसर्गो निपातः।"**[44] निरूक्त में उपसर्ग के विषय में विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है–

तदान्येतानि चत्वारिपद जातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च तानिमानी भवन्ति।[45] बृहद्देवता में उपसर्ग के विषय में लिखा है कि **"उपसर्गो निपातश्च नामचाख्यातमित्यपि।**[46] प्रातिशाख्यों में भी उपसर्ग के विषय में उल्लेख है–

तच्चतुर्धा। नामाख्यातो पसर्गनिपाताः। 8.52.53
उपसर्गो विशेषकृत। वा.प्रा. 8.55

प्रायः प्रादिगण में पठित उपसर्ग होते हैं यह प्रसिद्ध हैं। गणपाठ के अनुसार उपसर्गों की संख्या 22 है– प्र, परा. अप्, सम्, अनु, अव, निस्, निर, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत, अभि, प्रति, परि, उप।

उपसर्गों की सख्या में प्राचीन और नव्य आचार्यों में मतभेद है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य में उपसर्गों की संख्या बीस है– **"प्राभ्यापरानिदुरनुव्युपापसंपरि– प्रतिन्यत्यधिसूद वापि उपसर्गा विशंतिरर्थवाचकाः सहेतराभ्यामिति।"**[47] अर्थात् बीस उपसर्ग नाम और आख्यात के साथ अर्थबोधक होते हैं। बृहद्देवता में स्पष्ट होता है–

उपसर्गास्तु विज्ञेयाः क्रियायोगेन विंशतिः।
विवेचयन्ति ते ह्यर्थं नामाख्यात विभक्तिषु।।[48]

बृहद्देवता में भी उपसर्गों की संख्या ऋग्वेद प्रातिशाख्य के सदृश ही है। पाणिनि ने बाईस उपसर्ग माने हैं, पाणिनि ने निस् और दुस् दो उपसर्ग अधिक ग्रहण किये हैं। उपसर्ग क्रिया के विशेषक होते हैं।[49] प्रादिगण से अतिरिक्त भी क्रिया के विशेषक होते हैं, परन्तु प्रादिगण से अतिरिक्त गतिसंज्ञक होते हैं।

निपात– निपात का स्वरूप सामान्यतः अवशिष्ट के रूप में प्राप्त होता है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य में **"तन्नाम येनाभिदधाति सत्त्वम्" "तदाख्यातं येनभावं सधातुः"**[50] इत्यादि नाम, आख्यात तथा उपसर्ग के लक्षण के अनन्तर **"इतरे निपाताः"**[51] इस सूत्र से इनसे भिन्न निपात होते हैं यही निपात का सङ्केतित लक्षण है। वस्तुतः निपात का सामान्यतः लक्षण **"निपतन्ति इति निपातः"** अर्थात् जो अनेक अर्थों में गिरते हैं अर्थात् जिनके अनेक अर्थ होते हैं उन्हें निपात कहा जाता है। यास्काचार्य ने निरुक्त में निपात पद की व्युत्पत्ति दी है– **"अथ निपाताः उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्तीति निपाताः उपमार्थेऽपि कर्मोपसंग्रहार्थेऽपि पदपूरणाः।"**[52] बृहद्देवता में भी निपात का लक्षण प्राप्त होता है– **"उच्चावच्चेषु चाथेषु निपाताः समुदाहृताः।"**[53]

व्याकरण शास्त्र में चादिगण को लेकर निपात का लक्षण किया है, पाणिनि का सूत्र **"चादयोऽसत्त्वे"।** कर्मप्रवचनीय और उपसर्गों की गणना में आने वाले सभी पद और उनकी पहुँच से परे असत्त्व वाचक (संयोजकादि) अव्यय, निपात कहलाते हैं।

कर्मप्रवचनीय– तीसरापक्ष नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात और कर्मप्रवचनीय इन पाँच वर्गों में पदों को विभक्त मानता है परन्तु कर्मप्रवचनीय को उपसर्ग से अलग स्वतन्त्र वर्ग में रखा गया है, इस मत के अनुसार– कर्मप्रवचनीय उपसर्ग के समान साक्षात् किसी क्रिया की विशेषता का द्योतन नहीं करते अतः ये उपसर्गों से भिन्न है।[54] वस्तुतः कर्मप्रवचनीय यह संज्ञा बहुत बड़ी है। यह संज्ञा निम्न व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ प्रकट करती है– कर्म अर्थात् क्रिया को जिन्होंने कहा है वे कर्म प्रवचनीय होते हैं यहाँ पर कर्त्ता में 'अनीय' प्रत्यय भूतकाल को प्रकट करता है इसलिए कर्मप्रवचनीय वर्तमान क्रिया का द्योतन नहीं करते। अथर्ववेदप्रातिशाख्य में कर्मप्रवचनीय के विषय में विवेचन प्राप्त होता है–

कृदन्ते द्वयुपसर्गे यत्र पूर्वेण विग्रहः
अनर्थकः कर्मप्रवचनीयो व्यूढो वा विगृह्यते।।[56]

उन स्थलों में जहाँ पर क्रिया सम्बन्ध का बोध कराकर निवृत्त हो जाती है वहाँ उत्पन्न सम्बन्ध का नियमन कर्मप्रवचनीय द्वारा होता है–

जनयित्वा क्रियां कांचित् सम्बन्धो विनिवर्तते।
श्रूयमाणे क्रिया शब्दे सम्बन्धो जायते क्वचित्।।
सः चोप जातः सम्बन्धो विनिवृत्ते क्रियापदे।
कर्मप्रवचनीयेन तत्र तत्र नियम्यते।।[57]

वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने कर्मप्रवचनीय के विषय विस्तृत विवेचना की है। कर्मप्रवचनीय के स्वरूप के विषय में लिखते हैं।

क्रियाया द्योतको नायं सम्बन्धस्य न वाचकः।
नापिक्रिया पदापेक्षी सम्बन्धस्य तु भेदकः।।[58]

अतः कर्मप्रवचनीय न तो क्रिया का द्योतक है, न सम्बन्ध का वाचक है और न ही क्रियापद की अपेक्षा रखता है अपितु क्रियाजनित सम्बन्ध का भेदक मात्र है।

वस्तुतः पद–विभाग के विषय में तीन प्रकार के मत प्राप्त होते हैं द्विधा, चतुर्धा तथा पंचधा। सभी मत युक्तिसंगत है। यह प्रतीत होता है कि द्विधा पक्ष नाम तथा आख्यात के अन्तर्गत कहीं न कहीं उपसर्ग निपात और कमप्रवचनीय भी सम्माहित है तथा नाम, आख्यात, उपसर्ग निपात में कर्मप्रवचनीय समाहित है।

भाषा शास्त्र में पद एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जिसके साधु ज्ञान तथा साधु प्रयोग से भाषा अपने साधु रूप के प्राप्त करती है। पतञ्जलि ने कहा भी है कि– **"अपदं न प्रयुञ्ज्यते"** अर्थात् बिना

पद बनाये प्रयोग नहीं करना चाहिये। व्याकरण के प्रयोजनों में भी पतञ्जलि ने कहीं न कहीं भाषा शुद्धता पर ही विचार किया है। अतः हमें वाणी की शुद्धता तथा भाषा की शुद्धता के लिए भाषा एवं व्याकरण के पद सदृश तथ्यों का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है।

पद–विभाग

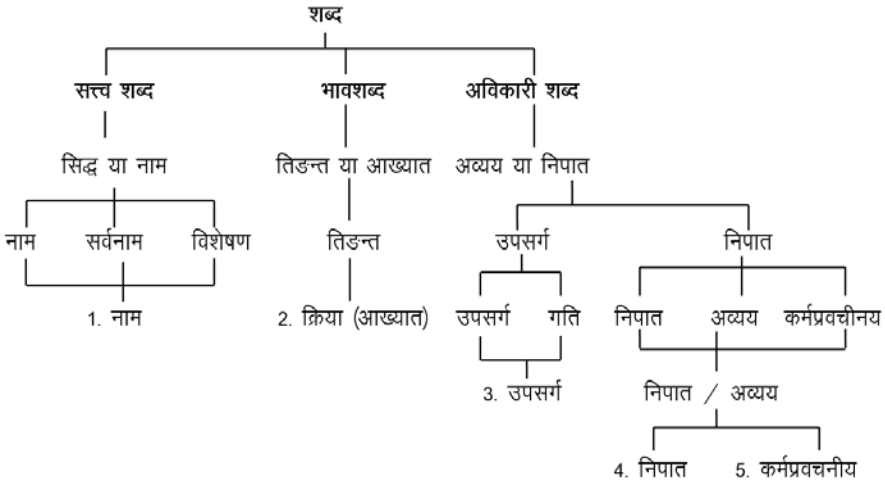

पाद टिप्पणी

1. बहुलं छन्दसि। अ. 2.4.39
2. इवेतिभाषायांचान्वध्यायं च। नि. 1.2.1
3. ऋ. 1.22.5
4. गो.ब्रा. 1.1.24
5. तै.प्रा. 1.54
6. बृ.दे. 2.117
7. तै.प्र. 1.1.48
8. न्या.म. 6
9. अ. 1.4.14
10. अ. 4.1.2
11. अ. 3.4.78
12. महाभा. 6.1.84
13. वा. 3/1
14. ऋ. प्रा. 12.17
15. क) भावप्रधानमाख्यातं सत्त्व प्रधानानि नामानि। नि. 1.1
    ख) तन्नाम येनाभिद्धाति सत्त्वं तदाख्यातं येन भावमू। ऋ.प्रा. 12/18.19
16. अ. 1/4/14
17. ऋक् सं. 1/164, 45
18. ऋ.प्रा. 12.17
19. नि. 1.1.1
20. नि. 13.9
21. चत्वारिपद जातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च। महाभा. परप. 1.1.1
22. ऋ. प्रा. 12.17
23. शु.यजु. प्रा. 8.49
24. नाम, आख्यात, उपसर्गः, निपात इतिचत्वारिपदजातानि– शब्दविदः आहुः। ऋ.प्रा. 12.17 उ.भा.
25. पदचातुर्विध्यं भाष्यकारोक्तं युक्तमिति विवेक्तव्यम्। (सर्वद.सं. पाद)
26. अपरे व्याकरणमताऽनुसारिणो नामाख्यातोपसर्गनिपातभेदेन... ऋक् सं. 1.164.45 सायण भाष्य
27. येविद्वांसः सन्ति ते नामाख्यातोपसर्ग निपातान् चतुरो जानन्ति। ऋक् सं. 01.164.45 दया. भा.
28. क्रियाविशेषक उपसर्गः। पचतीति क्रिया गम्यते, तां प्रोविशिनष्टि। महाभा. 1.3.1
29. उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति। अप्युपमार्थे कर्मोसंग्रहार्थेऽपि पदपूरणाः। नि. 1.2.1
30. न तूपसर्गनिपानां नामाख्यात निरपेक्षाणामर्थोऽस्ति। नि.दु.वृ. 1.1.1
31. साक्षात् क्रिया विशेषप्रकाशनाभावात्त दपि पंचमम्। हेला.वा. 3.1.1
32. कृदन्ते द्वयुपसर्गे यत्र पूर्वेण विग्रहः
    अनर्थकः कर्मप्रवचनीयो व्यूढो वा विगृह्यते। अ.प्रा. 1.1.10
33. गो.ब्रा. 1.1.24
34. ऋक् प्रा. 12.18
35. शु.यजु.प्रा. 8.46
36. ऋक् प्रा. 12.19
37. शु.यजु.प्रा. 8.46
38. निरूक्त 1.1.1
39. क्रियाप्रधानमाख्यातम्, द्रव्यप्रधानं नाम। ऋक् सं. 1.164.45 (सा.भा.)
40. वा.प्रा. 8.49 उव्वट भाष्ये अनन्तभाष्ये चोद्धृतः
41. महाभा. 5.3.66
42. अ. 1.4.59
43. ऐ.ब्रा. 16.4
44. गो.ब्रा. 1.1.24
45. नि. 1.1.1
46. बृ.दे. 1.39.
47. ऋक् प्रा. 12.20
48. बृदे. 2.94
49. महाभा. 1.3.1
50. ऋक्. प्रा. 12.21
51. नि. 1.2.1
52. बृ.दे. 2.89
53. अ. 1.4.57
54. साक्षात् क्रिया विशेष प्रकाशनाभावात्तदपि पंचमम्। हे.वाक्य. 3.1.1
55. अ.प्रा. 1.1.10
56. वाक्य. 2.197, 199
57. वाक्य. 2.204

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ऋग्वेद प्रातिशाख्य – वीरेन्द्र कुमार वर्मा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

निरूक्त – यास्कप्रणीत, व्या. सीताराम शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली

पदपदार्थ समीक्षा – बलदेव सिंह, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

पदपदार्थ विभाग परिशीलनम् – चक्रवर्ती जगदीश चतुर्वेदी, किशोर विद्यानिकेतन, वाराणसी

भाषातत्त्व और वाक्यपदीयम् – डॉ. सत्यकाम वर्मा, भारतीय प्रकाशन, नई दिल्ली

महाभाष्य – युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत

व्याकरण की दार्शनिक भूमिका – डॉ. सत्यकाम वर्मा, मुंशी मनोहर लाल, नई दिल्ली

वाक्यार्थ विवेचनम् – डॉ. धनुर्धर झा, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली

वाक्यपदीयम् – रघुनाथ शर्मा, अम्बाकर्त्री व्याख्या सहित, वाराणसेयं संस्कृत विश्वविद्यालय